ताश का देश

रवीन्द्रनाथ ठाकुर



ताश का देश

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवाद
रणजीत साहा

चित्र
चैताली चटर्जी

साहित्य अकादेमी

Tash Ka Desh: Hindi translation by Ranjit Saha of Rabindranath Tagore's play in Bengali *Tasher Desh*. Sahitya Akademi, New Delhi (2008), Rs.50

प्रथम संस्करण: 1998

पुर्नमुद्रण: 2005, 2008 (द्वितीय)

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय : रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली–110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली–110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई–400 014

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर–560 001

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर मार्ग, कोलकाता–700 053

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304), अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई–600 018

मूल्य: 50 रुपये

ISBN: 81-260-0317-0

Website: http://www.sahitya-akademi.gov.in
E-mail: sahityaakademisales@vsnl.net

साहित्य अकादेमी रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कृतियों को
भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करने की दिशा में
विश्वभारती से प्राप्त सहयोग का
साभार उल्लेख करती है।

समर्पण

कल्याणेषु श्रीमान सुभाषचन्द्र,

तुमने स्वदेश के चित्त में नवीन प्राण संचार करने का पुण्य व्रत धारण किया है। इसी बात को ध्यान में रखकर, मैं 'ताशेर देश' नाटिका तुम्हें समर्पित करता हूँ।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शान्तिनिकेतन
माघ 1345 बंगाब्द (1939 ई.)

भूमिका

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (7 मई 1861–7 अगस्त 1941) ने 1882 में प्रकाशित कहानी 'एकटि आषाढ़े गल्प' (किसी आषाढ़ की कहानी) के आधार पर वर्ष 1933 में, यानी अपने जीवन के 72वें वर्ष में 'ताशेर देश' नाटिका का प्रणयन किया था। 'एकटि आषाढ़े गल्प' कहानी 'साधना' प्रत्रिका में प्रकाशित हुई थी। वस्तुतः इस नाटक का लेखन वर्ष 1933 में शान्तिनिकेतन में पूजावकाश के दौरान छात्र-छात्राओं के लिए नाट्य-मंचन के लिए लिखा गया था। इस नाटिका की रूप-सज्जा एवं मंच-सज्जा कलागुरु नंदलाल बोस ने की थी। उन्होंने नाटिका के पात्र-पात्राओं को ताश जैसे अलंकृत रूपाकार में प्रस्तुत किया था। इस नाटक का नया संस्करण लगभग पाँच वर्षों के बाद 1939 (1345 बंगाब्द) में प्रकाशित हुआ और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस कृति को सुभाषचंद्र बोस को समर्पित किया था। दरअसल उन्हीं दिनों शान्तिनिकेतन में हिन्दी भवन का उद्घाटन करने पंडित जवाहरलाल नेहरू पधारे थे और उनसे मुलाक़ात करने सुभाषचंद्र बोस भी वहाँ आये हुए थे।

रवीन्द्रनाथ द्वारा इस नाटिका के द्वितीय संशोधित पाठ में अपेक्षित परिवर्तन किये गये और प्रथम संस्करण की भूमिका को प्रथम दृश्य में रूपांतरित कर दिया गया। इसके साथ ही पत्रलेखा नामक एक नयी पात्रा का भी सृजन-संयोजन किया गया। साथ ही, ताशवंशी पात्रों को यह निर्देश दिया गया कि वांछित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए उनकी चाल-ढाल एवं कायिक भंगिमा यंत्रवत प्रतीत हो।

रवीन्द्रनाथ की नाट्य कृतियों में 'ताशेर देश' का विशेष महत्त्व है। हालाँकि रवीन्द्रनाथ के अन्य चर्चित नाटकों की चर्चा पहले भी हो चुकी थी और वे मंचित भी हुए थे लेकिन इस नाटक में उन्होंने अपने समय के सच को रूपकों, प्रतीकों और लोक-तत्त्वों के सम्मिश्रण से एक नयी प्रभावन्विति उत्पन्न की। इस लघु नाटिका का फलक रवीन्द्रनाथ के अन्य नाटकों की तरह बहुत विस्तृत है और यह अपने कथानक और उद्देश्य में बँधे-बँधाये मंच की सीमाओं को तोड़ उदात्त मानवीय भावना की निर्बाध

उड़ान की ओर प्रेरित करता है। इस नाटक की कथावस्तु में आख्यान-तत्त्व के साथ कल्पना का अपूर्व पुट है जिससे मंच का परिदृश्य जीवंत होता चला जाता है। रवीन्द्रनाथ ने स्थिति और गति के परस्पर संघात से एक अनुपम एवं नवीन आनंद-लोक का निर्माण किया है। 'ताश का देश' जो निर्जीव, मृतप्राय, रूढ़, जड़ और निष्प्राण पड़ा है वह दूर देश से आये अतिथि के आह्वान से प्राणवान हो उठता है। नवीन के स्पर्श से स्पंदित और मुखरित हो जाता है।...ठीक वैसे ही, जैसे सदियों से अंधकार में डूबी कोई रहस्यमय गुफा एक नन्हे दीप के प्रकाश से आलोकित हो उठी हो। इस ताश देश की कथावस्तु में गीत-संगीत के साथ संवाद और प्रहसन एवं निर्बंध प्रकृति के चित्रण से एक अनुपम सृष्टि तैयार की गई है। हालाँकि यह नाटक अपनी रंग-योजना में रूपकाश्रित है और इसके सारे महत्त्वपूर्ण पात्र—राजा-रानी, युवराज और सौदागर तथा ताशवंशी-गण अपरिचित होते हुए भी परस्पर संवाद करते हैं। इस नाटक का कथानक एक ऐसे राज्य से जुड़ा है जो एक जर्जर और पुरातन समाज अथवा (अथवा राष्ट्र या देश) की रूढ़ियों को न केवल झिंझोड़ने वाला बल्कि उसके सारे जड़ नियमों को तोड़ने के संकल्प से समृद्ध है, जिसकी कल्पना रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे युगद्रष्टा और मनीषी ही कर सकते थे। मानव मुक्ति के साधन जब बंधन बन जाते हैं तब मनुष्य 'ताश' के पत्तों की तरह निर्जीव और निस्पंद हो जाता है। ये ताश अपनी बेबस और एकरस ज़िन्दगी को चलती-फिरती लाश की तरह ढोते रहते हैं और जम्हाइयाँ लेते रहते हैं। इस विडम्बना और अभिशाप से मुक्ति का नवीन उपक्रम ही 'ताश का देश' नाटिका में चरितार्थ हुआ है। समस्त बंधनों को छिन्न-भिन्न कर एक ऐसे नवीन राज्य की उद्‌भावना का मंत्र इस रचना में निहित है जो सबको उन्मुक्त और उद्‌बुद्ध कर सकता है।

इस नाटिका में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात की ओर कवि ने संकेत दिया है कि ऐसे किसी भी अग्रणी और उन्नत समाज के लिये नारी-चेतना का होना बहुत ज़रूरी है। उसके मन प्राण का स्पंदन ही इस नवीन जागरण के लिए वांछित परिभूमि तैयार कर सकता है। यही प्रेरणा पुरुषपक्ष मन में भी नवीन प्राण का संचरण करती है। फिर सारे थोथे शास्त्र, पोथी-पत्रे, कोरे व्याकरण और क़ायदे-क़ानून जो अनावश्यक रूप से थोपे जाते हैं—बेकार और बकवास जान पड़ते हैं।

कई सुमधुर एवं सुस्वर गीतों (रवीन्द्र संगीत) से समृद्ध और सहज संवादों से मुखरित इस नाटिका में एक ऐसे नवीन और मुक्त समाज की अवधारणा तथा स्थापना पर बल है जो समस्त मानव समुदाय को उन्मुक्त करें। क़ायदे-क़ानून की ज़ंजीरों से जकड़े 'ताशदेश' या 'ताशद्वीप' में युवराज और उसके साथी सौदागर द्वारा 'उपद्रव'

की हल्की-सी बयार परिवर्तन की आँधी में तब्दील हो जाती है और सारे बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सभ्य, शिष्ट या अभिजात समाज के उन प्रतिष्ठित लोगों की भी ख़ासी ख़बर ली है जो रंग पोतकर ताश जैसे कृत्रिम बन जाना चाहते हैं। अपनी छब-ढब, चाल-ढाल और सहज छवि को बनावटी तेवर के साथ जुगाये रखने का उपक्रम कितना थोथा है, कवि ने इस विडम्बना की भी अप्रत्यक्ष रूप से भर्त्सना की है। उन्होंने कथावस्तु की स्वाभाविकता एवं तर्कहीन यथास्थिति को बनाये रखने के विरुद्ध प्रकृति के अनुयोग से ताशवंशियों की चेतना को झिंझोड़ा और झकझोरा है। नवीन के इस आग्रह से प्रेरित और अभिमंत्रित 'ताशदेश' अंततः अपने दुराग्रहों और जकड़बंदियों से मुक्त हो जाता है।

रवीन्द्रनाथ ने साहित्य, संगीत-नृत्य के साथ ललित कला अधिकाय को भी अपनी रचना-मनीषा का अनिवार्य अंग बनाया था। इसलिए 'चित्रांगदा' (1892) जहाँ अवनीन्द्रनाथ ठाकुर में रेखांकनों में युक्त थी वहाँ 'नटीर पूजा' (1926), 'चिरकुमार सभा' (1926), 'रक्तकरबी' (1926) तथा 'चण्डालिका' जैसी नाट्य रचनाओं का मंचन उन सारे अनुषंगों के ताल-मेल से सम्पन्न किया गया था।

शान्तिनिकेतन में विभिन्न अनुष्ठानों एवं अवसरों पर रवीन्द्रनाथ लिखित अन्य नाटकों में मंच-सज्जा और पात्र-पात्राओं की रूप-सज्जा का भार कलागुरु नन्दलाल बसु और कलाभवन के सहयोगियों को दिया जाता था। उक्त नाटकों में मौलिक अलंकरण के लिए सस्ते किन्तु सुरुचिपूर्ण सहज उपलब्ध भारतीय उपकरणों तथा साधनों को ही प्रयोग में लाया जाता था। परम्परागत होने के बावजूद इनका प्रयोग इस तरह किया जाता था कि ये हर बार नये और सटीक प्रतीत होते थे। 'ताशेर देश' की मंच-प्रस्तुति के समय भी यही किया गया। मोटे गत्ते या दफ़्ती पर रुपहले और सुनहरे रंगों के प्रयोग तथा रंग-बिरंगे काग़ज़ों को चिपकाकर राजवंशियों या ताशवंशियों के परिधान और परिवेश की रूप-सृष्टि की गयी थी। इनको रूपाकार प्रदान करते हुए यह नहीं कहा जा सकता था कि ये किसी विशेष ऐतिहासिक युग के हैं या प्रस्तावित युग की किसी विशिष्ट शैली का अनुकरण किया गया है। विभिन्न पुष्पों तथा पत्तों (ताड़, खजूर, सप्तपर्णी, केला एवं आम) के अलंकरण में नन्दलाल बसु की प्रतिभा से उनके सहयोगी, प्रशंसक और आश्रमिक हैरान रह जाते थे। पलाश, शिरीष, कनेर, रंजन, कृष्णचूड़ा आदि फूलों से बने आभूषण एवं आभरण की बात तो जाने दें, केले के पौधे की सफ़ेद चोब से भी गहनों का निर्माण किया गया था। ऐसे मनोरम दृश्यों और आयोजनों को वे दर्शक आज भी याद रोमांचित हो उठते हैं।

इस नाटक के प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद को आधार बनाकर कुछ मंच-प्रस्तुतियाँ

भी हो चुकी हैं। नयी दिल्ली की 'गीतांजलि' संस्था ने दूरदर्शन (सी.पी.सी) के लिए भी इसका उपयोग किया था। प्रस्तुत अनुवाद—विशेषकर गीतों के अनुवाद में रवीन्द्र संगीत को आधार बनाकर गीतों का संयोजन किया गया है। इन्हें रवीन्द्र-संगीत की गायन-पद्धति के अनुरूप भी प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य में अनुवादक को श्रीमती शुभ्रा मुखर्जी का सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसका साभार उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

आशा है, रंग-कर्मी इस अनुवाद को प्रामाणिक एवं मंच-योजना के अनुकूल पायेंगे।

—रणजीत साहा

साहित्य अकादेमी
रवीन्द्र भवन, नयी दिल्ली



गीत

वायु बहे ज़ोर-शोर, घनघटा छाये घोर
ओरे माझी नाव बढ़ाओ रे।
तुम कसके धरो हाल, मैं उठूँ बाँधू पाल
हैंसा मारो मारो टान
हैंयो...हैंयो...हैंयो।
ज़ंजीर झनकार
झन नन झन नन
यह नहीं नाव का भयातुर क्रंदन
बंधन दुर्वार, सह नहीं पाये भार
टलमल करता तभी आज
हैंसा मारो मारो टान
हैंयो...हैंयो...हैंयो !
गिन गिन पल छिन
चंचल होता मन
पूछो मत जाऊँ कि ना जाऊँ रे
संशय पारावार
मन में ही जाना है पार
शंका न रहे इस बार।
उन्मत्त महाकाल, यदि खोले जटाजाल
झंझा से लुंठित, ज्वार उठे उत्ताल
होना मत कुंठित
तालों ताल देना ताल
जय जय जय गाओ गान
हैंसा मारो मारो टान
हैंयो...हैंयो...हैंयो !

प्रथम दृश्य

राजपुत्र और सौदागर

राजपुत्र : आज तो कुछ अजीब-सा ही लग रहा है सौदागर !

सौदागर : क्या बात है राजकुमार ! आज तुम कुछ अनमने-से दीख रहे हो। बात क्या है ?

राजपुत्र : कैसे बताऊँ कि जी क्यों चंचल है ! अच्छा यह तो बताओ कि इन हंसों के झुंड-के-झुंड इस मौसम में हिमालय की तरफ़ क्यों आ जाते हैं—आख़िर इनमें ऐसी चंचलता क्यों है ?

सौदागर : कहीं दूर उनका बसेरा जो है।

राजपुत्र : अगर वहाँ उनका बसेरा है तो वे यहाँ तक उड़कर आते ही क्यों हैं ? नहीं...ऐसा तो उड़ान भरने के आनंद के लिए ही होगा।

सौदागर : क्या तुम भी उड़ना चाहते हो ?

राजपुत्र : और नहीं तो क्या !

सौदागर : तभी तो मैं तुम्हारी ये बातें समझ नहीं पाता। मैं तो कहता हूँ कि बेवजह उड़ने से अच्छा है किसी ख़ास मतलब के लिए पिंजरे में बंद पड़े रहना।

राजपुत्र : किसी ख़ास मतलब के लिए, यह क्या बात हुई ?

सौदागर : अरे हम सब भी तो सोने के पिंजरे में, ज़ंजीरों में बँधे पड़े रहते हैं—दाना-पानी मिलने के लालच में।

राजपुत्र : तुम नहीं समझोगे सौदागर...नहीं समझ पाओगे।

सौदागर : मुझमें यही तो कमी है। जो समझाना मुश्किल है—उस में सचमुच समझ नहीं पाता। अब तुम ही अच्छी तरह बताओ कि तुम्हें किस बात की तकलीफ़ है ?

राजपुत्र : क्या बताऊँ ! राजमहल में पड़े-पड़े एक जैसे नीरस और वेहद उबाऊ...दिन बिताना...

सौदागर : अच्छा तो इसे उबाऊ कहते हैं। वहाँ तो ढेरों आयोजन हैं...न जाने कितने उत्सव, अनुष्ठान और मनोरंजन के साधन हैं...

राजपुत्र : मुझे तो यही जान पड़ता है कि मैं सोने के मंदिर में पत्थर का देवता बनकर रह गया हूँ। कानों में हर घड़ी घंटी और घड़ियाल गूँजते रहते हैं। हर दिन वही नैवेद्य और प्रसाद। लेकिन उन भोगों में के उपभोग में मेरी कोई रुचि नहीं। अब यह सब और सहन नहीं होता।

सौदागर : हम जैसे लोग जो हैं। उन्हें जो भी मिलता है वे सब बड़ी आसानी से झेल जाते हैं। हमारी किस्मत में ऐसे भोग कहाँ ! यहाँ तो जैसे सर उठाते ही जैसे आसमान गिर पड़ेगा। जो मिल जाये उसी से हमारी भूख मिट जाती है। लेकिन तुम लोग जो नहीं पा सकते, उसी से मन-ही-मन अपनी भूख मिटाना चाहते हो।

राजपुत्र : और रोज़-रोज़ एक ही सुर में चारणों की स्तुतियाँ सुनते-सुनते कान पक गये हैं। वही घिसा-पिटा मंगलाचरण...वही ठाकुरसुहाती...वही चाटुकारिता...शार्दूल विक्रीडित छन्द में।

सौदागर : मुझे तो जान पड़ता है कि स्तुतियाँ भले ही अनगिनत बार सुनायी जाएँ, कानों को अच्छी ही लगती हैं। वे कभी पुरानी नहीं पड़तीं।

राजपुत्र : आँख खुलते ही सामने दीख पड़ती है वही वैतालिकों की भीड़। रोज़ सवेरे वही परिचित पुरोहित धान-दूब के साथ आशीर्वाद देने आता-जाता दीख पड़ता है। काठ के पुतले जैसा वही एक बूढ़ा चाकर हर घड़ी दरवाज़े पर तैनात। कहीं आने-जाने के लिए पाँव बढ़ाया नहीं कि प्रतिहारी हाजिर वह मुझसे कहेगा इधर आइए, इधर चलिए, उधर देखिए। इन सबने जैसे मेरे मन को किसी चट्टान के नीचे दबा रखा है।

सौदागर : क्यों, कभी-कभी तो तुम शिकार पर जाते ही हो—वहाँ जंगली

जानवरों के सिवा और किसी का आतंक तो नहीं होता।

राजपुत्र : जंगली जानवर भला किसे कहते हो तुम ! मुझे तो शक है कि राजशिकारी पहले से ही सारे शेरों को अफ़ीम खिला देते हैं। जैसे कि उन्होंने अहिंसा का पाठ रट रखा हो। मैंने अब तक किसी को अच्छी तरह छलाँग तक भरते नहीं देखा।

सौदागर : जो भी कहो, शेरों की इस आदत में मुझे किसी तरह की शरारत नहीं दीखती। वैसे शिकार पर जाने का सारा ताम-झाम तो पूरा हो ही जाता है। लेकिन जो नहीं होता है वह है कि सीने में किसी तरह की धुकधुकी नहीं होती।

राजपुत्र : अरे तुम्हें उस दिन की तो बात बताऊँ ! मैंने बहुत दूर से एक भालू को तीर का निशाना बनाया ही था कि चारों तरफ़ से वाहवाही की धूम-सी मच गयी। सबसे कहा, निशानेबाज़ी में राजकुमार का कोई सानी नहीं है। तभी कानोंकान पता चला कि एक मरे हुए भालू की ख़ाल में घास-फूस ठूँस कर उसे खड़ा कर दिया गया था। मैं इतना घटिया परिहास सहन नहीं कर पाया। मैंने उस शिकारी को कारादंड का आदेश दे दिया है।

सौदागर : उस पर बड़ा उपकार किया है तुमने। वह जिस कारागर में बंद है, वह तो रानी माँ के निवास से लगा हुआ है। वह तो बड़े मज़े में है। कुछ दिन पहले की ही तो बात है—उसके लिए हमारी आढ़त से तीन मन घी और साथ ही ढाई दर्जन बकरे भेजे गये हैं।

राजपुत्र : क्या कह रहे हो ?

सौदागर : रानी माँ के हुकुम से ही वह नक़ली भालू तैयार किया गया था।

राजपुत्र : अब समझा। तभी झूठ के जाल में हम सब फँस गए। एक सुरक्षित पिंजरे में पड़े रहते-रहते हमारे पंख अब उड़ने लायक़ नहीं रहे। सरासर नाटक है यह सब ! युवराज नाम देकर मुझे एक मसख़रा बना दिया गया है। जबकि मैं चाहता हूँ यह कि सारा स्वाँग, सारा तामझाम उतार फेंकूँ। मैं जब खुले खेतों में उन किसानों को खेती करते देखता हूँ तो सोचता हूँ कि वे सब अपने पुरखों के पुण्य से किसान बन कर पैदा हुए हैं।

सौदागर : अगर ऐसा ही है तो एक बार उन्हीं से जाकर पूछो कि वे सब तुम्हारे बारे में क्या सोचते है ? बात यह है कि राजकुमार कि तुम अनाप-शनाप, जो जी में आता है बोले जा रहे हो लेकिन जो असली बात है उसे छुपा रहे हो। अरी ओ पत्रलेखा, हमारे युवराज के मन में क्या कुछ है, शायद तुम्हीं इसका अन्दाज़ लगा सको। एक बार पूछकर क्यों नहीं देखती ?

पत्रलेखा का प्रवेश

पत्रलेखा : ***गीत***

मन की बातें ना रहे मन में
चुपके से छा गयी आके नयन में

राजपुत्र : *ना ना ना, रहे ना मन में।*

पत्रलेखा : *विह्वल हँसी में, गा उठे बंसी में*
कभी खिले होठों पे, सपनों में छुप के

राजपुत्र : *ना ना ना, रहे ना मन में।*

पत्रलेखा : *भौरे गूँज रहे*
मधुर व्यथा में ज्योति-पिपासु
अशोक खिले उठे
अंतर शतदल, करता है टलमल
अरुण प्रात में, करुण आभ में

राजपुत्र : *ना ना ना, रहे ना मन में।*

राजपुत्र : हाँ है, ज़रूर कोई बात है। लेकिन वह सुदूर आकाश में छिपी है। मैं कभी-कभी समुद्र किनारे बैठा पश्चिम दिगंत की ओर निहारता रहता हूँ। वहीं है मेरा अनदिखा—जिसने किसी यक्ष की तरह मेरा सारा धन दबाकर रखा है—मैं उसी की तलाश में जाऊँगा।

गीत

जाऊँगा, मैं तो जाऊँगा
सौदा करने जाऊँगा



खुशहाली ना भी मिले
कंगाली तो पाऊँगा।

सौदागर : क्या तुम सचमुच व्यापार करने जाओगे। अभी से सौदागरी का मंत्र बुदबुदा रहे हो।

राजपुत्र : *सजाऊँगा मैं जहाज़ अपना*
मल्लाह रखूँगा हज़ार
किसी नगर को चल दूँगा
कभी तो सागर पार।
मैं किस तारे को निहारूँ
कूल-किनारा छोड़ूँ रे
ले जाऊँ किस दिशा में
विपुल काले जल में
झूठी आशा के पीछे नहीं भागूँगा
सुनहरे रेतीले किनारे
जाऊँगा, मैं तो जाऊँगा।

सौदागर : बिना किसी ठौर-ठिकाने के तुम परदेस जाओगे ! यह तो सौदागरी की राह नहीं हुई। क्या कोई सूचना आयी है कहीं से ?

राजपुत्र : और नहीं तो क्या। मिली है, संकेतों में और सपनों में।

गीत

नीले आँचल तले वह सलोना द्वीप
घिरा प्रवालों से
जिसके शैल शिखर पर
सागर-पंछी डेरा डाले
पत्ते-पत्ते नारियल के
केवल झंझावात पुकारे
बहती नग-नदी
सघन वनों की ओर से झाँके
सात राजाओं का धन पाऊँ
अगर मैं वहाँ जाऊँ...
जाऊँगा, मैं तो जाऊँगा।

सौदागर : तुम्हारे इस गीत से ही पता चल गया कि ये मणि-माणिक्य सौदागर वाले कीमती पत्थर नहीं। ज़रा उस माणिक्य का नाम तो बताओ।

राजपुत्र : नवीना...नवीना।

सौदागर : नवीना। चलो, इतनी देर बाद किसी एक का नाम पता तो चला।

राजपुत्र : लेकिन साफ़ तौर पर रूप में ढलने में इसे अभी देर लगेगी।

राजपुत्र : ***गीत***

हे नवीना...हे नवीना
प्रतिदिन की पथधूलि में जाए न तुमको चीन्हा

वाणी की जो लहर बहे बासन्ती बयार में
नैन खुले तो देखा तुमको, ओ स्वर्णमेघ लीना।
हे नवीना... ।

सौदागर : फिर तो अपने सपने के इस धन को समेट पाना बड़ा मुश्किल होगा।

राजपुत्र : ***गीत***

सपने में आकर के तुम कैसा कौतुक रचती
किस अलका के फूलों से तुम अपनी अलकें सजाती
किन अनजाने स्वरों में, निर्जन में बजाती बीना...
हे नवीना... ।

(राजमाता का प्रवेश)

सौदागर : रानी माँ, आपका युवराज तो जाल फैलाकर किसी मरीचिका को पकड़ना चाहता है...यह तो किसी स्वप्नलोक की खोज में जाना चाहता है।

रानी माँ : यह मैं क्या सुन रही हूँ ? कैसा बचपना है यह-सब तुम्हारा ?

राजपुत्र : हाँ माँ, बूढ़े-बुजुर्गों की इस सयानी दुनिया में मेरे मन-प्राण घुटते रहते हैं।

रानी माँ : मैं समझ गयी बेटे ! बात यह है कि तुम्हारा अभाव और कुछ नहीं—अभाव का ही अभाव है। जो तुम्हें सहज ही प्राप्त है उससे तुम्हें अरुचि हो चली है। ऐसा कोई अवसर तुम्हारे हाथ

नहीं लगा कि तुम किसी चीज़ की माँग करो।

राजपुत्र : *गीत*

मेरा मन यही कहे—वही चाहिए मुझे
जिसे नहीं पाऊँ रे
सब कुछ पाकर भी मेरा
मन हरदम रोये रे
'ना ना ना रे।
खुद को होगा खोना, तभी होगा पाना
सन्ध्या तारा डूब चला अब
भोर का तारा जाग उठा रे
कहता है सब छोड़ चला अब।'

रानी माँ : बेटे, अब अगर मैं तुम्हें बाँध रखना चाहूँगी तो खो दूँगी। अब तुम आराम का बोझ और सेवा का बंधन झेल नहीं पाओगे। और मैं भी किसी भय के चलते तुम्हारा अनिष्ट नहीं चाहती। मैं तुम्हारे माथे पर श्वेत चन्दन का तिलक लगाऊँगी। तुम्हारे श्वेत उष्णीष को सफ़ेद कनेर के फूलों से सजाऊँगी। साँझ ढलते ही तुम्हारी आँखों में आरती का काजल आँज दूँगी जिससे कि तुम्हारे पथ की सारी बाधा दूर हो जाए।

(रानी माँ का प्रस्थान)

गीत

राजपुत्र :

देखो, सागर में लहर उठे
तेज पवन बहे।
सूर्य जहाँ अस्त हुआ
मेघ वहाँ झलके।
दक्षिण देखूँ, उत्तर देखूँ
फेनिल लहरें, और नहीं कुछ
भले किनारा नहीं मिले तुझे
सागर तल तो मिले।
छपरी में छिपकर कभी नहीं बैठूँगा
बीच धार में लेकर नौका

मैं जाऊँगा परदेस
मैं खुद अपना बनकर माझी
लेकर अपनी सूनी नाव।
नये-नये पवनों से भरकर
जाऊँगा मैं द्वीप-द्वीपान्तर
अपनी तरी में भर लाऊँगा
मैं सारे अनमोल रतन।
यह कंगला मन लौटेगा
तब महाराजा बन।

दूसरा दृश्य

राजपुत्र : एक किनारे से मैंने अपनी यात्रा शुरू की लेकिन बीच समुद्र में ही मेरी नाव डूब गयी। और मैं एक दूसरे किनारे जा पहुँचा। इतने दिनों बाद मुझे ऐसा लगता है जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

सौदागर : राजकुमार, तुम हर घड़ी नयी-नयी बातों के लिए बेचैन हो उठते हो और मुझे इन नयी चीज़ों से बड़ा डर लगता है। वैसे तुम जो भी कहो दोस्त, जो पुराना होता है वह बड़े आराम की चीज़ होता है।

राजपुत्र : हाँ, कुएँ के मेंढक जैसा...कूपमण्डूक। तभी यह बात नहीं समझ पाये। अरे हम तो मौत के मुँह से निकल आये हैं और स्वयं यमराज ने हमारे भाल पर नये जीवन का तिलक लगाया है।

सौदागर : भाई राजतिलक तो तुम्हारे भाल पर तब से ही लगा है—जब तुम पैदा हुए थे।

राजपुत्र : वह तिलक तो नियति का भिक्षादान था। यमराज ने महासमुद्र के जल में वह रातजतिलक पोंछ दिया है और यह आदेश जारी किया है कि किसी नये राज्य को नयी शक्ति से जीत लेना होगा। नये देश में—

गीत

आये हम नये देश में।
डूब गयी रे टूटी नैया, अब आये कौन किनारे।

मैं ना जानूँ मन की भाषा
सुनाएगा, अपूर्व, कौन-सी आशा,
वही बुनेगा रंगीन धागों से सुख दुख के जाल
अंतर में जब लगेगा बजने, नये गीत का ताल
और नवीन वेदना में भरकर रोयेंगे—गायेंगे।
फूलों की माला ले, वह अनजानी प्रिया
हिया को देगी हिया
यौवन की इस नवल छटा में, भौंरों की गुन-गुन में
हरी घास पर छनक उठेंगे नूपुर, फागुन में
झूमेगा मलयानिल
मंजरित लवंगलता में
उसकी चपल अलकावली में।
आये हम नये देश में...एक नये देश में...।

सौदागर : युवराज, तुम्हारे गान की सुरीली धुन में लिपटी बातें सुनने में तो बहुत अच्छी लगती हैं। लेकिन सवाल यह है कि इस देश में यौवन का नया रूप तुम्हें दीखा कहाँ ! मैं तो चारों तरफ़ घूम आया। लेकिन सब कुछ देखकर यही जान पड़ता है कि यह तो किसी लकड़हारे के हाथों बना सूखी लकड़ियों का ठूँठा उपवन है। यहाँ के सारे-के-सारे चौकोर जीव कठपुतले की तरह चल-फिर रहे हैं। इनकी पीठ और छाती एकदम चपटी है। चलते हैं तो खट-खट की आवाज़ सुनाई देती है। मुझे तो यही जान पड़ता है कि उन्होंने जो चौकोनी पायल पहन रखी है वह भी इमली के लक्कड़ से बनी है। इस मुर्दा देश को तुम नया देश कहते हो।

राजपुत्र : इसी से तुम समझ जाओगे कि बाहर से जो चीज़ दिखायी दे रही है, वह बनावटी है। ऊपर से थोपी गयी है। ये सब इस देश के पोंगे पंडितों द्वारा बनाए गए आवरण हैं। और हम यहाँ आए किसलिए हैं—इन्हें हटाने। जब उनके अंदर के प्राणों का कोरा निखरा रूप सामने आएगा तब सबको आश्चर्य होगा।

सौदागर : भई, हम ठहरे सौदागर ! आँखों के सामने जो कुछ जैसा दीखता

हैं, उसी से उसकी कीमत तय करते हैं। लेकिन तुम लोग उन चीज़ों पर विश्वास करते हो, जो नज़रों से ओझल रहती हैं। अच्छा अब यह देखना है कि राख के ढेर में से आग निकलती है कि नहीं ! मुझे तो यही लगता है कि फूँक मारते-मारते दम ही बाहर निकल जाएगा। लो...देखो, इस तरफ़ ही आ रही है ज़िन्दा लाशें...नाचती हुईं...

राजपुत्र : थोड़ा इधर आकर खड़े रहो। देखें तो सही, मामला क्या है ?

(ताशों के दल का प्रवेश)

ताशों के अनोखे करतब

गीत

ऊपर नीचे
आगे पीछे
बायें दायें
हम नहीं चाहें
बैठें उट्ठें...
फिर से गिरना
उलटी-पुलटी
चक्कर चाल
इतना ही बस।

सौदागर : देख रहे हो न तमाशा—लाल वर्दी, काली वर्दी उठती है, गिरती है...सोती है...सब कुछ बिना मानी...बे मतलब। है न हैरानी की बात !

छक्का : बात क्या है ? तुम हँस क्यों रहे हो ?

पंजा : शर्म नहीं आती तुम सबको ! हँस रहे हो...हँसते जा रहे हो !

छक्का : नियम-क़ानून कुछ भी नहीं मानते तुम लोग ? और ऊपर से हँसते चले जा रहे हो।

राजपुत्र : हँसी का भी कोई-न-कोई मतलब तो होता है। लेकिन तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह तो सरासर बेमानी है।

छक्का : मतलब ! मतलब की क्या ज़रूरत है ! बस...सिर्फ़ नियम का पालन चाहिए। इतना भी नहीं समझते। क्या तुम दोनों पागल हो !

राजपुत्र : असली पागल को पहचानना इतना आसान नहीं। आख़िर तुमने हमें पहचाना कैसे !

पंजा : तुम्हारी चाल ढाल देखकर !

राजपुत्र : कैसा जान पड़ी !

छक्का : मैंने देखा, तुम लोगों की तो केवल ढाल ही है, चाल नहीं।

सौदागर : और तुम लोगों की केवल चाल ही है, ढाल नहीं।

पंजा : तुम्हें पता नहीं, चाल ही सबकुछ है। वह बहुत प्राचीन चीज़ है और ढाल है एक आधुनिक, युवा तरुण—जिसकी मसें अभी भीगने को हैं।

छक्का : लगता है किसी सच्चे गुरु ने तुम्हें यह सब नहीं पढ़ाया। किसी ने बताया नहीं कि घाट-बाट में खन्दक है, खाई है, जोहड़ है, काँटें हैं, ठोकरें हैं, सँभल-सँभलकर चल पाना भी बहुत मुश्किल है।

राजपुत्र : यह देश भी तो गुरुओं का ही देश है। हम उनकी शरण में जाएँगे।

छक्का : तुम्हारा परिचय ?

राजपुत्र : हम ठहरे परदेसी !

छक्का : तो फिर आगे कुछ बताने की ज़रूरत नहीं। यानी तुम्हारी ना तो कोई जात है और न पात। कुल-गोत्र-इष्ट-मंत्र, गुरु-गोंसाई, वर्ण या वर्ग—कुछ भी नहीं।

राजपुत्र : हाँ, कुछ भी नहीं। सब कुछ परे हटाकर, जो बचा है—वह तो तुम देख ही रहे हो। अब तुम सब अपने बारे में बताओ !

छक्का : हम सब हैं विश्वविख्यात ताशवंशी। मेरा नाम है छक्का वर्मन।

पंजा : मैं हूँ पंजा वर्मन।

राजपुत्र : और वह जीव जो संकोच से दूर ख़ड़ा है—उधर...

छक्का : वो...काला-कलूटा—वह है तिक्का घोष।

पंजा : और ये रंग-रंगीले दुक्का दास।

राजपुत्र : तुम लोगों का जन्म कहाँ से हुआ ?

छक्का : बात यह है कि सृष्टि के काम-काज से ब्रह्माजी काफ़ी थक गए थे। उस थकान के चलते, एक दिन शाम ढलते पहली बार जब उनके मुँह से जम्हाई निकली तो उसी पवित्र जम्हाई से हमारी

पैदाइश हुई।

पंजा : यही वजह है कि छोटी-मोटी भाषा और बोलियों में हमें ताशवंशी के बदले जम्हाई-वंशी कहा जाता है।

सौदागर : अच्छा ! (हैरानी से)

छक्का : उसी गोधूलि बेला की शुभ घड़ी में चतुर्मुख पितामह ने अपने चार मुखों से एक साथ चार जम्हाइयाँ लीं।

सौदागर : अरे बाप... ! फिर क्या हुआ !

छक्का : उन चार मुँहों से ताबड़तोड़ कालापान, लालपान, ईंट और चिड़िया— ये चारों के चारों निकल पड़े। ये सभी हमारे पूजनीय हैं। **(प्रणाम करता है।)**

राजपुत्र : अच्छा, तो सबके सब कुलीन थे।

छक्का : और नहीं तो क्या ! कुलीन ही नहीं, मुख्य कुलीन...क्योंकि हम सब मुँह से उत्पन्न हुए हैं।

पंजा : ताश वंश के आदिकवि भगवान ताशरंग निधि दिन में चार घड़ी तक सोते हैं। अपने सपने की खुमारी में उन्होंने जो छन्द बनाया है उसकी मात्रा की गणना के अनुसार हम सबकी साढ़े सैंतीस प्रकार की पद्धतियों का उद्भव और विकास हुआ।

राजपुत्र : अच्छा तो किसी एक के बारे में तो बताओ !

पंजा : अच्छा तो उधर मुँह फेर लो।

राजपुत्र : क्यों !

पंजा : नियम की बात है ! भाई छक्के राम, तुम ज़रा ठुंग वाला मन्तर मार कर इनके कान तो फूँक दो।

राजपुत्र : क्यों !

पंजा : बात नियम की है :

गीत

जम हाई...जमहाई
आई आई आई आई
काम नहीं नहीं काम
नहीं नहीं काम नहीं
आये दिन जाये दिन

बीते दिन रीते दिन

हाई आई जम हाई ! !

राजपुत्र : उफ, अब और सहन नहीं होता। इसलिए मुँह मोड़ना पड़ा।

पंजा : लो, तुमने तो मंत्र को भ्रष्ट कर दिया !

राजपुत्र : भ्रष्ट !

पंजा : और नहीं तो क्या ! इस मंत्र पर बीच में ही परदेशी की बुरी नज़र पड़ गयी।

राजपुत्र : तो फिर इसका उपाय ?

छक्का : चमगादड़ द्वारा भकोसे गये भटकटैया की गुठलियाँ जलाकर काजल बनाना होगा, और फिर उसे तीन दिन तक आँखों में आँजना पड़ेगा तभी स्वर्ग सिधारे पितामहों का उपवास टूटेगा।

राजपुत्र : फिर तो बड़ी भारी समस्या खड़ी हो गयी। अब तो तुम्हारे देश में बड़ी सावधानी से चलना होगा।

छक्का : बल्कि एकदम...एक क़दम भी नहीं चलना बेहतर होगा। तभी तुम शुद्ध रह पाओगे।

राजपुत्र : हमारे लिए कुछ भी समझना मुश्किल है। अच्छा, एक बात बताओगे ? उस टीले के ऊपर क़तार बाँधकर तुम सब क्या कर रहे हो ?

छक्का : लड़ाई।

राजपुत्र : अच्छा, इसे लड़ाई कहते हैं।

पंजा : और क्या ! पूरे नियम और क़ानून के मुताबिक लड़ाई। ताशवंश की मान-मर्यादा के अनुसार लड़ाई।

गीत

हम सब हैं चित्र, कितने विचित्र

हम सब विशुद्ध, पावन पवित्र।'

सौदागर : जो भी हो, लड़ाई में अगर थोड़ी उठा-पटक और धींगामुश्ती न हो तो मज़ा नहीं आता।

छक्का : क्यों नहीं, हमारा गुस्सा भी बड़ा रंगीन होता है।

हम सबके युद्ध

कोई नहीं क्रुद्ध,

देखो ये गुलाम
एकदम भोलेराम

सौदागर : भले ही ऐसा हो, लेकिन लड़ाई के मैदान में तोप-कमान और गोली-बन्दूक़ अच्छे ही लगते हैं।

पंजा : *न कोई अस्त्र-शस्त्र,*
बस, ख़ाकी वस्त्र
लोभ नहीं, क्षोभ नहीं
उछल नहीं, कूद नहीं

राजपुत्र : भले ही ना हो, लेकिन कोई मुद्दा तो होना ही चाहिए। इसी बात पर तो दोनों पक्ष में लड़ाई ठनी हुई है।

छक्का : *जितना है जाना, उतना ही माना*
कौन है पराया कौन तेरा अपना
कौन है फक्कड़, कौन बुझक्कड़ !

पंजा : अच्छा परदेसी, तुम लोगों की उत्पत्ति भी तो शास्त्र के अनुसार ही हुई होगी न !

सौदागर : अवश्य ! सृष्टि के आरम्भ में ही, पितामह ब्रह्मा ने सूर्यदेव को जैसे ही सान पर चढ़ाया ही था कि उनके नथुने में आग की एक चिनगारी घुस पड़ी। उन्होंने तोप की तरह एक झन्नाटेदार छींक मारी। उसी प्रलयंकारी छींक से हमारी उत्पत्ति हुई।

छक्का : अब मेरी समझ में आया कि तुम लोग इतने चंचल क्यों हो !

राजपुत्र : तभी तो हम कभी एक जगह टिक कर नहीं रह सकते। इधर-उधर छिटकते और गिरते-पड़ते रहते हैं।

पंजा : यह तो कोई अच्छी बात नहीं।

सौदागर : कौन कहता है कि यह अच्छी बात है ! लेकिन आदि युग की उस छींक का ज़ोरदार झटका हम आज तक सँभाल नहीं पाये।

छक्का : उसी का एक बेहतर नमूना ही तो मेरी आँखों के सामने हैं। उसी छींक के झटके से तुम लोग जितनी जल्द हो—इस ताश-द्वीप से छिटककर बाहर जा गिरोगे।

सौदागर : यहाँ टिकना सचमुच बहुत मुश्किल है।

पंजा : आख़िर तुम्हारी लड़ाई किस तरह की है ?

सौदागर : वह है दो पक्षों के बीच, चार-चार जोड़ों की छींक की लम्बाई वाली।

छक्का : छींक की लम्बाई...! फिर तो खोपड़ियों के बीच खूब कुटम्मस होती होगी।

सौदागर : एकदम धमा धम...म्म।

छक्का : अच्छा तुम लोगों के आदि कवि का कोई मंत्र तो होगा !

सौदागर : हाँ, है क्यों नहीं !

गीत

आँ...आक्...छी...मुझे न डराओ
गला दबाके जमा के मुक्के
कहो रही कैसी धुनाई
आँ...छी...आँ...छी...आक् छी !

छक्का : अरे भाई पंजा, यह तो एकदम दूसरी कोटि का है। अच्छा भाई, तुम्हारी जात क्या है।

सौदागर : हम सब नक्कू हैं...नकुल...नाक से उत्पन्न हुए हैं।

पंजा : भई किसी ऊँची जाति के लोगों के बारे में ऐसी बात तो नहीं सुनी।

सौदागर : उसी जम्हाई की भाप से इधर तुम लोग उड़कर ऊपर परलोक के भी पार जा पहुँचे और छींक के झटके से हम सब गच्चा खाकर उधर इहलोक में जा पड़े।

छक्का : पितामह की नासिका की असावधानी के नाते ही तुम लोग इतने अजूबे हो। अद्भुत हो...

राजपुत्र : इतनी देर बाद तुम्हारे होठों से यही तो एक सही बात निकली है। हम सब सचमुच अद्भुत हैं :

गीत

हम नवयौवन के अग्रदूत
हम हैं चंचल, हम हैं अद्भुत।
हम ही तोड़ें सारे बेड़े
हम ही रँगे अशोक वन की रंगिमा
हम हैं अद्भुत।

हमीं तोड़ते झंझा-बंधन
हम हैं विद्युत।
हम करते हैं भूल !
अतल जल में उतर के भी पा लेते कूल—
कोई पुकारे हमें जीवन-मरन झंझा में
हम हैं प्रस्तुत।

छक्का-पंजा : (एक साथ, एक दूसरे का मुँह देखकर) नहीं चलेगा...यह सब नहीं चलेगा।

राजपुत्र : जो नहीं चलता, उसे ही हम चलाते हैं।

छक्का : लेकिन ये नियम...क़ानून !

राजपुत्र : बंधनों का नियम तोड़ने पर ही आगे बढ़ने का नियम अपने आप निकल आता है। वर्ना आगे बढ़ेंगे कैसे ?

पंजा : बाप रे, यह सब क्या बोल-बक रहे हैं ये लोग ! आगे बढ़ेंगे ! कितने उत्साह से कह रहे हैं—'हम आगे बढ़ेंगे।'

राजपुत्र : ऐसा न हो तो फिर चलना किसलिए।

छक्का : चलना ! भला तुम क्यों चलोगे भाई। चलेंगे ये नियम...

गीत

चलो नियम मानो।
दूर मत देखो
गरदन मत मोड़ो
सीधी राह चलो।

राजपुत्र :
देखो जंगलों को
है वहाँ नियम कोई !
मलयाचल पर्वत के
पागल झरनों को

ताशों का दल :
इधर मत देखो...मत देखो
उधर मत जाओ, सीधी राह चलो।

पंजा : **अब और नहीं। लो, वो पधार रहे हैं राजा साहब...पधार रही हैं रानी साहिबा। आज यहीं सभा बैठेगी। लो पकड़ो, कद्दू की एक-एक टहनी।**



राजपुत्र : कद्दू की टहनी। हा... हा... हा... (हँसकर पूछता है) क्यों ?

पंजा : चुप रहो...मत हँसो। यही नियम है। अब ईशान कोण की तरफ़ मुँह करके बैठ जाओ। ख़बरदार जो वायु कोण की ओर मुड़कर भी देखा।

राजपुत्र : क्यों ?

छक्का : यही यहाँ का नियम है भाई !

[राजा-रानी का इक्के के गुलाम के साथ पूरे हाव-भाव के साथ प्रवेश।]

राजपुत्र : अरे भाई, मैं स्तुति गान करके राजा को प्रसन्न कर दूँगा। लो, तुम इस कद्दू की लतर को हिलाते रहो—

गीत

जय जय ताशवंश अवतंस
क्रीड़ा सरसी तीर के राजहंस
आम्रकूट घन धूम्र विलासी
तन्द्रा तीर निवासी
सब-अवकाश ध्वंस
जय, यमराज के अंश
जय जय ताशवंश अवतंस... ।

सब के सब : भल्टा...भस्टर...भस्टा... । इन बर्बरों ने अचानक ही सारी सभा भंग कर दी...भ्रष्ट कर दी।

राजा : ख़ामोश, शान्त हो जाओ...कौन हैं ये !

छक्का : परदेसी हैं हुजूर।

राजा : परदेसी ! फिर तो इन पर कोई नियम-क़ानून लागू नहीं होगा। ऐसा करो कि एक बार तुम सब अपनी-अपनी जगह बदल लो। तब इसका सारा दोष कट जाएगा। सबसे पहले ताश महासभा का राष्ट्रगान हो—

गीत

घिड़िया लालपान कालापान।
इसी सनातन लय में करते हैं हम नर्तन।
कोई उठता कोई गिरता

कोई कहीं भी, टुक नहीं हिलता
कोई धरती पर सोया-सोया
करे काल कर्तन।
मुँह से कुछ नहीं बोले,
नहीं मुसकाये
सामने से आये पीछे हटता जाये
चले पुरानी चाल से
बँधे पुरानी ढाल से, तनिक नहीं परिवर्तन।
चिड़िया लालपान कालापान।

राजा : सुनो परदेसी !

राजपुत्र : फ़रमाइए राजा साहब।

राजा : कौन हो तुम ?

राजपुत्र : मैं समुद्र पार का एक दूत।

गुलाम : क्या कोई भेंट लाये हो ?

राजपुत्र : इस देश में जो दुर्लभ था, वही लाया हूँ।

गुलाम : भला कौन-सी चीज़ है वह ?

राजपुत्र : उपद्रव।

छक्का : सुन लिया न राजा साहब ! क्या बक रहा है यह ? यह आदमी आगे बढ़ना चाहता है। और आप शायद इस बात पर यकीन नहीं करें कि यह आदमी हँसता भी है। फिर तो यह दो दिनों में ही यहाँ की हवा हलकी करके रख देगा। इसका रुख़ बदल देगा।

गुलाम : यहाँ की हवा जितनी स्थिर और स्थायी है उतनी अन्य किसी ग्रह की नहीं है। इन्द्र का वज्र भी इसे हिला हटा नहीं सकता। फिर किसी ऐरे-ग़ैरे की क्या मजाल।

सभी : (एक साथ) क्या मजाल...क्या मजाल !

गुलाम : चूहे जितना कलेजे वाला यह परदेसी अगर यहाँ की हवा का रुख़ सचमुच बदल दे...तब क्या होगा ?

राजा : यही तो सोचने की बात है।

सभी : यही तो सोचने की बात है।

गुलाम : हलकी-हलकी बयार ही तो आँधी लाती है महाराज ! तब सारे कायदे-क़ानून सूखे तिनके की तरह उड़ जाते हैं। अब तो हमारे पुरोहित श्रीमान नहला गोस्वामी जी भी बोल पड़ेंगे कि हम भी आगे बढ़ेंगे।

पंजा : यहाँ तक...भगवान न करे ! हो सकता है यहाँ यह हँसी भी किसी महामारी की तरह फैल जाए।

राजा : अरे हो काले पान के गुलाम !

गुलाम : जी राजा साहब !

राजा : तुम तो एक सम्पादक हो—

गुलाम : मैं ही ताशद्वीप-प्रदीप का सम्पादक हूँ स्वामी। साथ ही ताशद्वीप की संस्कृति का रक्षक भी हूँ।

राजा : संस्कृति...। यह भला कौन-सी चीज़ है। इस शब्द में तो ज़रा-सा भी मिठास नहीं।

गुलाम : सच महाराज, इसमें ज़रा-सा मिठास तक नहीं, और इसका मतलब क्या है—इसका भी पता नहीं चलता। लेकिन महाराज जिसे नवीन कहते हैं न...यह उसी की नवीनतम भेंट है। वही संस्कृति आज कंगाल हो गयी है।

सभी : संस्कृति...संस्कृति...।

राजा : तुम्हारे समाचार-पत्र में सम्पादकीय का स्तम्भ होता है न !

गुलाम : हाँ महाराज, दो भारी-भरकम स्तम्भ हैं।

राजा : तो फिर उन स्तम्भों की घनगरज से सबको स्तम्भित कर देना होगा। हम कभी यह बर्दाश्त नहीं करेंगे कि यहाँ की हवा हलकी या पतली हो जाए।

गुलाम : फिर तो यहाँ नियंत्रणमूलक क़ानून चाहिए।

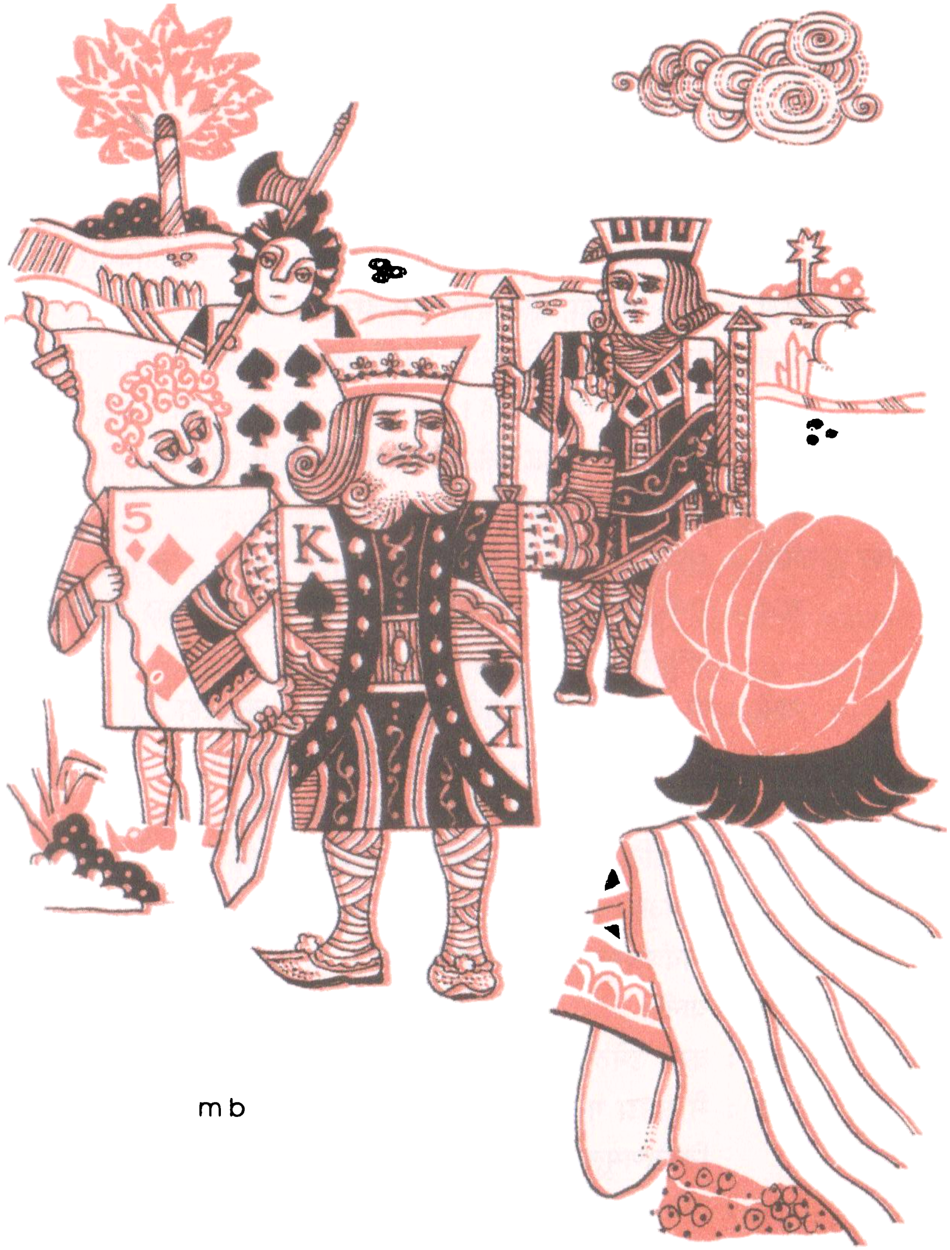
राजा : क्या कहा, नियंत्रणमूलक क़ानून !

गुलाम : कान उमेठकर चलाने वाले कानून की नयी जुबान। यह भी सबसे नयी भेंट है।

राजा : अच्छा, देखा जाएगा। अच्छ परदेसी, तुम्हें कुछ कहना है ?

राजपुत्र : जी हाँ, लेकिन आपसे नहीं।

राजा : फिर किससे ?


mb

राजपुत्र : ***गीत***

ओ री शान्त पाषाण मूर्ति सुन्दरी,
मैं चंचल हूँ, अंतर में वरण करो सुन्दरी।
कुंज में आना अकेली
नैनों में आँसू भरके
अरुण राग में रंजित
विकसित वेदना सुन्दरी।

रानी : हमारे नियमों का यह कैसा उल्लंघन ! यह कैसा अविचार !

पंजा : रानी साहिबा, इसी वक़्त इसे इस देश से निकाल दीजिये।

राजा : देश निकाला। निर्वासन ! रानी साहिबा, आपका क्या आदेश है ? आप चुप क्यों है। क्या आपने मेरी बात सुनी ! कोई उत्तर तो दीजिए। क्या इसे निर्वासित कर दिया जाये !

रानी : नहीं निर्वासन नहीं।

इक्का कुमारियाँ : (समवेत) नहीं, निर्वासन नहीं।

राजा : रानी साहिबा ! आज आपके रंग-ढंग और तेवर कुछ अजीब-से लग रहे हैं।

रानी : हाँ, आज सचमुच मुझे कुछ अजीब-सा लग रहा है।

गुलाम : इक्का कुमारी जी, और बेगम साहिबा जी, आप सब यह याद रखिएगा कि मेरे ही ज़िम्मे संपादकीय स्तंभ है।

समवेत : संस्कृति, संस्कृति, संस्कृति। ताशद्वीप की उस संस्कृति को बचाओ।

गुलाम : नियंत्रणमूलक क़ानून जारी करो।

राजा : यानी।

गुलाम : कान उमेठने वाला क़ानून लागू करो।

राजा : मैं समझ गया रानीसाहिबा, आप क्या फ़रमा रही हैं ! तो फिर नियंत्रणमूलक क़ानून ही जारी किया जाएगा।

रानी : हम सब भी रनिवास में नियंत्रणमूलक क़ानून ही चलाते आए हैं। देखना है, कौन किसको निर्वासित करता है ?

इक्का कुमारियाँ : (एक साथ) हम सब भी चलाएँगे ग़ैर-क़ानूनी, बे-कायदे।

गुलाम : क्या हुआ ! हाय संस्कृति, हाय संस्कृति-हाय री संस्कृति।

राजा : अब मैं सभा भंग करने का आदेश देता हूँ। सब कोई यहाँ से चले जाँय। यहाँ रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं।

(ताश के दल का प्रस्थान)

सौदागर : दोस्त लगता है, अब यहाँ टिक पाना बहुत मुश्किल है। ये सब के सब विधाता के व्यंग्य हैं। इनके बीच फँसे तो हम दोनों ही बर्बाद हो जायेंगे।

राजपुत्र : लेकिन तुम्हें दिखाई नहीं देता कि अन्दर-ही-अन्दर क्या कुछ घटित हो रहा है। पुतलों में किस तरह पहली-पहली बार नयी जान-सी आ गयी है। क्या इसे तुम महसूस नहीं कर रहे ? भई मैं तो आख़िरी दम तक यहाँ रहूँगा और सारा तमाशा देखकर ही जाऊँगा।

सौदागर : लेकिन यह तो ज़िन्दा लोथड़ों का पिंजरा भर है। क़ायदे और क़ानून के तेजाब से इनका तन-मन पीला पड़ गया है।

राजपुत्र : लेकिन ज़रा उधर की तरफ़ भी आँख उठाकर देखो।

सौदागर : अरे यह तुमने तो ठीक ही कहा। समुद्र पार का मंत्र तो सचमुच काम कर गया। कालापान का नहला पेड़ के नीचे पाँव पसार कर आकाश की तरफ़ देख रहा है। जान पड़ता है यहाँ के नियम और क़ानून सब-के-सब टूट रहे हैं।

राजपुत्र : तुम आकाश से आती चिड़िया रानी के क़दमों की आहट सुन रहे हो न ! इस घड़ी तो ऐसा लग रहा है कि हमारा साथ भी वे पसन्द नहीं करेंगे। चलो, हम ही हट जाएँ यहाँ से।

तृतीय दृश्य

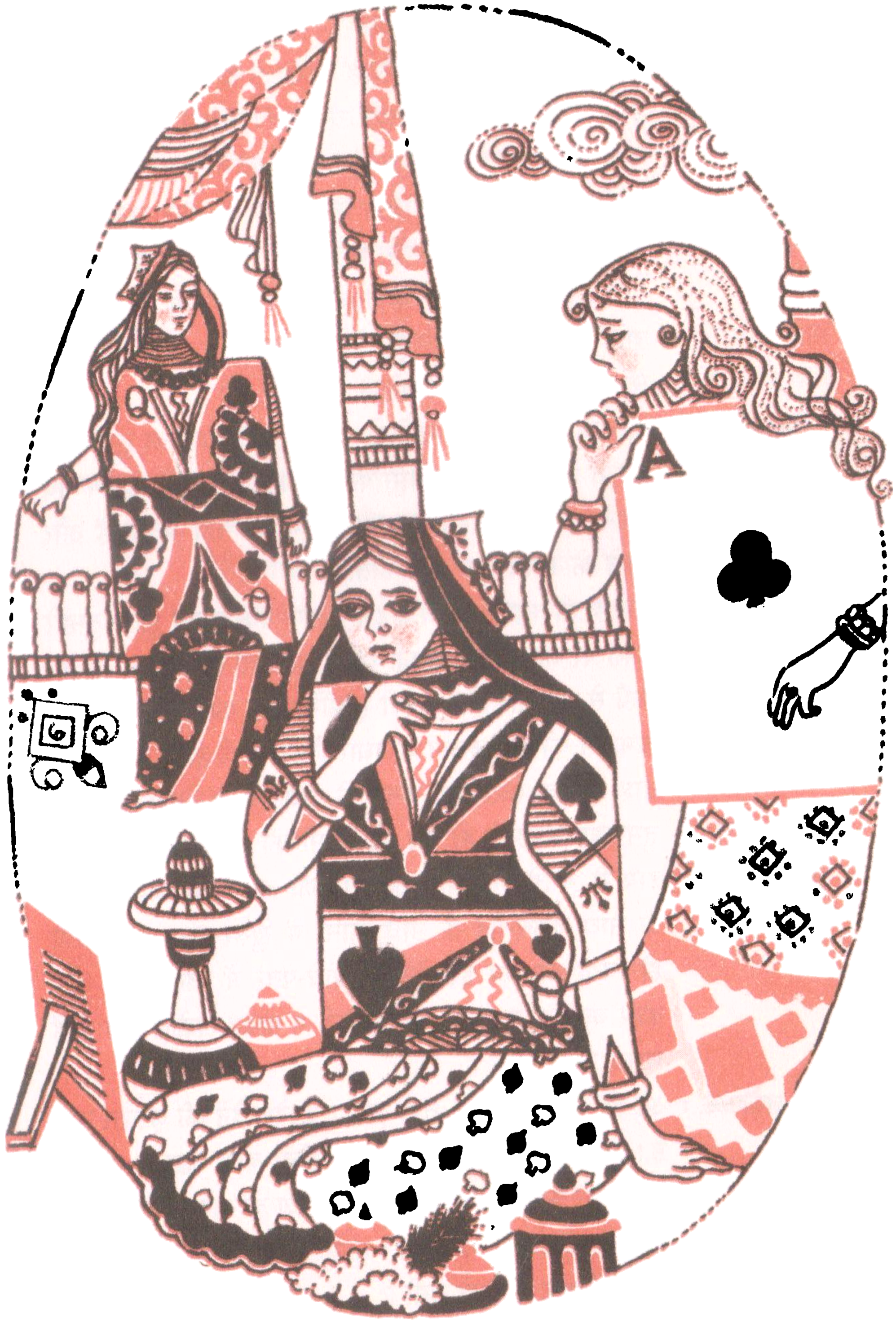
(कालापान रानी सिंगार कर रही है। तभी इक्कानी का प्रवेश)

इक्कानी : ***गीत***

बोलो सखी, बोलो वही नाम
मेरे इन कानों में।
कही वही नाम मेरे इन कानों में
जो गूँजे तेरे, प्राण वीणा के
इन तानों में।
बासन्ती वायु में, वनवीथी में
वही नाम मिल जाये
विरही विहग की कुहू कुहू में
जो नाम मादक कर जाये बकुल की साँसें।
वर्ना सखियों के होठों-होठों में
वह नाम पींग भरेगा कौतुक से।
पूनम की रातों में
जब मेरा मन चंचल हो जाये अकारण
वही नाम दोहराऊँगी मैं इन गानों में।

कालापान रानी : इस ताश देश का क्या हो गया है ? यह परदेसी पता नहीं यहाँ कैसी पागल हवा ले आया ! मन में अजीब हलचल-सी मची है।

इक्कानी : हाँ सखी, दो दिन पहले किसे पता था कि ये ताशवंशी अपनी



Q
A

जात-पाँत गँवाकर इंसानों जैसी चाल-ढाल अपना लेंगे। छी... छी...यह कैसी शर्म की बात है !

कालापान रानी : सखी, क्या यही इन्सानियत है ? यह तो घोर जुल्म है। लेकिन इसकी शुरुआत की है तुम्हारी उस लालपान रानी ने। तुमने देखा नहीं, आजकल उसका रंग-ढंग कैसा बदल गया है। वह तो एकदम इन्सानों जैसी हरकत करने लगी है। कब, कहाँ, किस तरह और कैसे किसके पास खड़ा रहना चाहिए—सब कुछ भूल गयी है। पास-पड़ोस में भी इसकी चर्चा होने लगी है। इसने तो ताश देश का नाम ही डुबो दिया।

(तभी चिड़िया रानी का प्रवेश)

चिड़िया रानी : बात क्या है इक्कानी साहिबा—सुन रही हूँ आजकल तुम हमारे बारे में उल्टी-सीधी बकवास कर रही हो। बोल रही हो हम सब अपने आचार-व्यवहार भुलाकर उठने की घड़ी बैठती हैं और बैठने के समय उठ खड़ी होती हैं।

इक्कानी : सच ही तो कहा है। लेकिन इसमें आज क्या ग़लती हुई ? तुम्हारे गालों पर जो लालिमा चमक रही है, बता तो रंगिनी, वह रंग तुम कहाँ से चुरा लाई हो ! अपनी भ्रू-भंगिमा का काजल किस परदेसी अमावस की काजललता से उधार लेकर आयी हो ? यह सब तो ताश देश के सात-सात जनम के पोथे-पत्रे में लिखा नहीं था। तुम क्या समझती हो इस पर किसी की निगाह नहीं पड़ी !

चिड़िया रानी : हाय री, मैं तो मर गयी ! और तुम जो अपनी सखियों-सहेलियों के साथ बकुल-पेड़ के नीचे कानों में खुसर-पुसर करती रही हो—क्या वह सब इस देश के पोथे-पतरे में लिखा है ? और उधर वह बेचारा गुलाम कोई संगिनी न पाकर अकेला ठंडी आहें भरता रहता है।

लालपान : ओ हो, पण्डितानी जी, तुम्हें ज़्यादा उपदेश देने की ज़रूरत नहीं है। अपने जूड़े में तुमने जो लाल फीता बाँध रखा है न उसी को फाँसी का फंदा बनाकर तुम ताशदेश के सारे आचार-विचार का दम घोट कर रख दोगी। ताशरमणी होने के बावजूद तुम इतनी बेशरम कैसे हो गयी ?

चिड़िया रानी : तो इसमें क्या हो गया ? मैं किसी से नहीं डरती। तुम लोगों की तरह छिप-छिपकर आँख मिचौनी खेलना मेरा स्वभाव नहीं। यह जो तुम्हारी दहलानी है न...एक दिन वह मुझे 'मानवी...मानवी' कह-कह कर चिढ़ाई आयी थी। लेकिन मैंने उसे साफ़ तौर पर बता दिया है कि तुम सबकी ताशिनी होकर मरने की बजाय मानवी बनकर बचे रहना कहीं बेहतर है।

कालापान रानी : इतना गुमान भी ठीक नहीं है। पता है, तुम्हें जात बाहर करने की बात चल रही है।

चिड़िया रानी : हुँह, जात और वह भी ताश की ! लो, तुम्हारी इस ताश जात को मैंने आज खुद ही ठुकरा दिया। अब भला मुझे किस बात का डर !

कालापान रानी : सत्यानाश, इतना दुःसाहस। ऐसी बातें तो मैंने पिछले सात जन्मों में नहीं सुनी और इधर ये ढिंढोरा पीटकर मानवी होने को चली है। चलो भई इक्का रानी, पता नहीं कोई किसी कोने से इसके साथ बातें करते देख ले तो हमारे लिए बड़ी मुसीबत हो जायेगी।

चतुर्थ दृश्य

(श्रीमती लालपान और इक्का का प्रवेश)

लालपान : *गीत*

मैं तो फूल बीनने आयी बन में
ना जानूँ...ना जानूँ।
क्या गोपन था मेरे मन में।
मेरा फूल बीनना
नहीं फूल बीनना
जानूँ नहीं जी में होता है क्या
आँसू भर आये
मेरे नैनन में।

(ईंट साहब का प्रवेश)

ईंट साहब : क्या बात है लालपान रानी...तुम यहाँ ! तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कितनी देर हो गयी।

लालपान रानी : क्यों, क्या बात है ? कुछ चाहिए !

ईंट साहब : तुम्हें राजसभा के गराबु मण्डल में बुलाया गया है।

लालपान रानी : उन्हें बता दो, मैं कहीं ओर खो गयी हूँ।

ईंट साहब : खो गयी हो।

लालपान रानी : हाँ, खो गयी हूँ। जिसे तुम ढूँढ़ रही हो, उसे कभी भी नहीं पा सकोगे।

ईंट साहब : यह क्या अजीब तमाशा है ! इस उपवन में आने का तुमने

साहस कैसे किया ? क्या तुम्हें यहाँ की रीत-नीत का पता नहीं। यहाँ का ऐसा विधान नहीं।

लालपान रानी : नियम तो नहीं, लेकिन पता नहीं किसके नियम से आज इस वर्षाविहीन ताश के देश में ऐसे घनघोर बादल छा गये हैं। सुबह उठते ही आँखों के आगे समस्त आकाश पटल पर श्यामल बादल उमड़ते दीख पड़े। अब तक तुम्हारे देश के मोर अपने पाँव ज़मीन पर रखते भी थे तो गिन-गिनकर। नाचते भी थे तो बड़ी सावधानी से। आज पता नहीं, कैसे सारे नियमों को परे फटककर वे अपने सारे पंख फैलाकर पागलों-से नाच उठे हैं।

ईंट साहब : लेकिन उनके लिए, जिनके घर का आँगन कभी परदेस जैसा था—वे भी आज फूल बीनने को बाहर निकल पड़ी हैं—और ऐसा अनूठा काम तुम्हारे दिमाग में आया कैसे ?

लालपान रानी : अचानक ऐसा जान पड़ा कि मैं जैसे कोई मालिन हूँ। पिछले जनमों में भी मैं फूल ही बीना करती थी। आज पुरवाई का हल्का-सा झोंका उन तमाम जनमों के उपवनों से फूलों की सुरभि ले के आ गया। और उन्हीं जनमों के माधवी-वन से मेरे मन का भौंरा गुनगुनाता जा रहा है—

गीत

घर में भौंरा आया करता गुन गुन
मुझसे किसकी बातें, कहे सुन-सुन
नभ की किस आभा में, माधवी जागे वन में
फूल खिलाने का सन्देश करती वहन।
दिन भर यही कहे होके मगन।
घर में रहूँ कैसे, मन मेरा नहीं माने
कैसे काटूँ मैं अपने दिन, गिन-गिन।
कैसी है यह माया, जिसने सब कुछ भुलाया
ढल गयी अब तो बेला, सरगम के जाल बुन-बुन
मुझसे ये किसकी बातें, कहे सुन-सुन।

ईंट साहब : गराबू मण्डल के लिए मैं कब से बीवी सुन्दरियों को ढूँढ़ रहा हूँ। क्या वे सब भी...।

लालपान बीवी : हाँ, वे सब मेरी ही तरह यहीं नदी के किनारे-किनारे और पेड़ों के तले-तले...अपने सारे साज-सिंगार बदल रहे हैं, कैसा लग रहा है यह सब...पसन्द आया।

ईंट साहब : लगता है जैसे पर्दा ख़ुल गया। चाँद के सामने से काले बादल हट गये हैं और एकदम से कोई नया मनुष्य सामने आ गया है।

लालपान बीवी : तुम्हारे छक्के-पंजे हमें डराने-धमकाने आये थे—लेकिन अब उनका हाल तो देखो।

ईंट साहब : क्यों, क्या हुआ ?

लालपान बीवी : वे पागलों की तरह इधर-से-उधर घूम रहे हैं और आहें भर रहे हैं। इतना ही नहीं, वे कोई गीत भी गुनगुना रहे हैं।

ईंट साहब : गीत...! छक्का पंजा और गीत !

लालपान बीवी : भले ही सुर में न गा रहे हों, बेसुरा ही सही, गा तो रहे हैं। मैं तब अपना जूड़ा बाँध रही थी। वहाँ रुक नहीं पायी।

ईंट साहब : कमाल की बात है। तुम जूड़ा बना रही थी...आख़िर यह सब तुम्हें किसने सिखाया ?

लालपान बीवी : किसी ने नहीं। लो उधर देखो, अचानक सूखे झरने में पानी बहने लगा है। जल की धाराओं में जैसे वेणी-बन्धन शुरू हो गया है। उन्हें किसने पढ़ाया यह पाठ ! चलो मेरे साथ, छक्के-पंजे का गान तुम्हें भी सुना दूँ—

(प्रस्थान)

ताश-बीवियों का आगमन

बीवियाँ : ***नृत्य और गीत***

अनजाने सुर कौन सुनाये, इन कानों में
भावना हमारी तिरती जाये, इन गानों में
बिसरे जनम के छाया लोक में
खोयी हुई बीना के शोक में
रोती फिरे पथहारी रागिनी
किस बासन्ती मिलन रात में, तारे गिनते
भावना हमारी तिरती जाये, इन गानों में।

(ईंट साहब और लालपान बीवी का दोबारा प्रवेश)


A
A

ईंट साहब : मैं किसे दोष दूँ...मैं तो खुद गीत गाना चाहता हूँ।

लालपान बीवी : कहीं ऐसा ना हो कि हमारा सम्पादक यह सब सुन ले और अपने स्तम्भ में तुम्हें बदनाम कर छोड़े। मैंने दखा कि उस उपवन में घूमता-फिरता ख़बरें जुटा रहे हैं।

ईंट साहब : देखो लालपान, मैंने अपने मन से सारा डर निकाल फेंका है—पता नहीं क्यों ! अब तुम जो भी चाहो, मुझे बताओ। चाहे जितनी भी मुश्किलें आयें मैं तुम्हारे लिए कुछ कर गुज़रना चाहता हूँ।

लालपान बीवी : चाहे जो भी करो, मगर अभी गीत तो मत गाओ। यहाँ उपवन में जवाकुसुम खिले हैं, उन्हें ले आओ। उन फूलों के रंग से मैं अपने पाँव रँगूँगी।

ईंट साहब : देखो सुन्दरी, आज सुबह आँखें खुलते ही मैं समझ गया कि हमारा यह ताश जनम एक सपना भर था—जो अचानक टूट गया। हमारा एक और जनम अभी हवा के झोंकों में तिर रहा हैं उसी की बात होठों पर मचल रही है और उसी का गान कानों में गूँज रहा है। तो, सुनो...सुनो मेरे उन्हीं पिछले जनमों में रचे गये गानों को आकाश से लेकर कोई उतर रहा है—

ईंट साहब : ***गीत***

अपने चरण तल में लगने देना महावर
मेरे मन उपवन के फूलों के रंग से रँगकर।
मेरे गानों के तानों से
तेरे कानों में सजेंगे भूषण।
लाल मणिहार गूँथ दूँ
अनुराग भरे प्राणों से।

लालपान बीवी : इस गीत को तुमने ही कभी सुर दिया था—और वह भी मेरे लिए...है ना... ? इसे सुरों में कैसे बाँधा ?

ईंट साहब : जिस तरह तुमने अपनी वेणी गूँथी।

लालपान बीवी : अच्छा, तुम्हें याद है, कि मैं किसी जनम में तुम्हारे गानों के साथ नाचा करती थी।

ईंट साहब : हाँ, याद आ रहा है। इतने दिनों तक मैं वह सब कैसे भूला रहा, यही सोच रहा हूँ।

ईंट साहब और : ***गीत***
लालपान बीवी : *मदिर वायु, चले मेरे गीतों के नाव संग*
झूले लहरों के संग-संग
झूमे नाचे इसके अंग-अंग।
डोर अगर टूटे
चाहे पतवार टूटे
चाहे घोर ज्वार उठे
सामने मौत खड़ी नाचे
तनिक नहीं भय—हम तो निश्चय, उसे जीत के रहेंगे।

ईंट साहब : देखो लाल बीवी, आज मेरे मन ने यमराज से भी टकराने की ठान रखी है। मैं अपनी आँखों के सामने एक चित्र देख रहा हूँ कि तुम मेरे भाल पर जयतिलक लगा रही हो मैं बन्दिनी का उद्धार करने निकल पड़ा हूँ और बन्द दुर्ग के द्वार पर अपनी दुन्दुभि बजा रहा हूँ। मेरे कानों में तुम्हारा वही विदा गीत आज भी सुनाई दे रहा है, जो तुमने कभी गाया था—

गीत

विजय माला लाओ मेरे लिए
लम्बी रातों में, रहूँगी, मैं जागी।
जब मरणतीर पर चरण तेरे पड़ेंगे
अन्तर में मेरे प्राण झूम उठेंगे
खो जाये तब, खो जाये सत्र
मैं बनूँगी तुम्हारे सर्वनाश की भागी।

लालपान बीवी : चलो, चलो वीर ! मृत्यु की शपथ लेकर हम दोनों निकल पड़ते हैं। मैं अपने सामने ही देख रही हँ कि कोई काला पत्थर भृकुटि ताने खड़ा है। उसे तोड़कर धूल में मिला देना होगा। अगर वह टूट कर सिर पर गिरता भी है तो गिरने दो। हमें पहाड़ों का सीना चीर कर राह बनानी होगी। आख़िर यहाँ क्या करने आयी थी और क्यों यहाँ पड़ी हूँ ? दिन अर्थहीन बीत गये और रातें प्राणहीन। हर पल, हर छिन व्यर्थ हो गया।

ईंट साहब : क्या तुम में इतना साहस है सुन्दरी ?

लालपान बीवी : है...है क्यों नहीं !

ईंट साहब : इस अनजाने से डर तो नहीं लगेगा !

लालपान बीवी : हरगिज़ नहीं।

ईंट साहब : देखना, पाँव लहूलुहान हो जायेंगे लेकिन रास्ता ख़त्म नहीं होगा।

लालपान बीवी : पता नहीं, किस युग में उसी दुर्गम पथ पर हम दोनों निकल पड़े थे। मैंने रातों में तुम्हारे साथ-साथ मशालें थामी हैं और दिनों में तुम्हारे आगे-आगे विजय-तोरण लिए बढ़ती रही। आज, एक बार फिर उठ खड़े होओ। आलस्य का यह बेड़ी, यहीं तोड़नी होगी। इन बेजान चीज़ों के ढेर और बेकार थी सारी चीज़ों को उठाकर फेंक देना होगा।

ईंट साहब : सारे आवरण हटा दो। चिंदी-चिंदी कर बिखेर दो। मुक्त होओ...शुद्ध होओ। पूर्ण होओ...।

(प्रस्थान)

(छक्का-पंजा का प्रवेश)

छक्का : हाँ भाई पंजे, क्या बात हो गयी ?

पंजा : अरे अपनी तरफ़ देखकर बड़ी शरम आती है। मूरख का मूरख ही बना रहा इतने दिन।

छक्का : यह सवाल इतने दिनों बाद क्यों उठ रहा है ? आख़िर इस सबका जवाब क्या है ?

पंजा : लो, दहला पण्डित भी इधर ही आ रहे हैं। उन्हीं से पूछ लो।
(दहला का प्रवेश)

छक्का : अरे भाई, हम इतने दिनों तक जो उठते-बैठते रहे। अपना रोना-धोना लेकर उचकते-मटकते रहे, दिन काटते रहे, उन सबका क्या मतलब था !

दहला : चुप रहो।

छक्का : (एक साथ) हम चुप नहीं रहेंगे।

दहला : तुम्हें डर नहीं लगता ?

छक्का-पंजा : (एक साथ) नहीं...एकदम नहीं। तुम्हें बताना होगा कि इन सबका क्या मतलब था ?

दहला : कोई मतलब नहीं–नियम है...सिर्फ़ नियम-पालन...।

छक्का : और अगर कोई नियम नहीं माने।

दहला : तो उसको दण्ड दिया जायेगा।

छक्का : ठीक है, वही सही, मैं दण्ड भुगत लूँगा।

दहला : भला किसलिए !

पंजा : वहाँ अगर असम्मान या अपमान भी मिले तो उसके साथ जूझते।

दहला : इस शांतिप्रिय देश में तुम गँवारों जैसी बात क्यों कर रहे हो ?

पंजा : मैंने शपथ ली है कि मैं शांति भंग करूँगा।

(लालपान बीवी का प्रवेश)

दहला : आप सुन रही हैं न श्रीमती लालपान महारानी ! ये लोग प्रशान्त महासागर के किनारे स्थित हमारे इस अनोखे द्वीप की शान्ति भंग करना चाहते हैं।

लालपान बीवी : हमारी शान्ति क्या है ? क्या उस एक बूढ़े पेड़ की तरह जिसे अन्दर-ही-अन्दर दीमक ने चाट-चाटकर खोखला कर दिया है ! इस बेजान पेड़ को काट डालना ही ठीक होगा।

दहला : छी...छी...छी...छी ! ऐसी गंदी बातें और तुम्हारे मुँह से ! तुम तो एक नारी हो—तुम्हीं तो रक्षा करोगी शान्ति की और हम पुरुष...हम रक्षा करेंगे संस्कृति की...कृष्टि की।

लालपान बीवी : बहुत लम्बे समय तक तुमने हमें धोखे में रखा है पण्डित ! तुम लोगों के शान्ति रस में हमारा खून बर्फ़ की तरह जम गया है। अब और हमें धोखे में मत रखना।

दहला : सर्वनाश। तुमने यह सारा पाठ कहाँ से सीखा है ?

लालपान बीवी : मन-ही-मन मैं उसी को तो पुकार रही हूँ। और आकाश में उसी का गान सुन रही हूँ।

दहला : सत्यानाश, आकाश में गान। फिर तो ताशों का देश नष्ट होने को ही है। यहाँ रहना ठीक नहीं।

(प्रस्थान)

छक्का : सुन्दरी, तुम्हीं हमें कोई रास्ता दिखाओ।

पंजा : तुमने अशान्ति का मंत्र पाया है। वह मंत्र हमें भी दो।

लालपान बीवी : हम सब विधाता के धिक्कार में जी रहे हैं और मूर्खता-भरा

तिरस्कार झेल रहे हैं। चलो, यहाँ से निकल चलें।

छक्का : ज़रा-सा हिले नहीं कि ये हमारा दोष ढूँढ़ लेते हैं और कहते हैं कि अशुद्धि हो गयी। अशुचि हो गयी...

लालपान बीवी : भले ही दोष हो जाए। लेकिन मुर्दा पड़े रहने से बढ़कर कोई अशुचि नहीं।

(प्रस्थान)

(कालापान बीवी और एक्का रानी फूल बीन रही हैं)

एक्का रानी : लो, दहलानी जी आ रही हैं। इनसे बचना बहुत मुश्किल है। **(दहलानी का प्रवेश)**

दहलानी : अरी तुम छिप कहाँ रही हो ? कौन हो...ठीक से पहचानी भी नहीं जा रही। अच्छा, ये तो हमारी एक्कारानी है। और वो...अच्छा हमारी कालापान रानी...हाय मैं मर गयी रे...कैसी छब-ढब बना रखी हैं...अच्छा...तुम दोनों ने इन्सानों जैसा रूप धरा है ! शरम नहीं आती...।

एक्का रानी : मैंने कोई रूप नहीं धरा। अचानक ही हमारा सारा साज खुल कर नीचे गिर पड़ा।

दहलानी : ताश देश का बन्धन बड़ा ज़बरदस्त बन्धन है। हज़ारों सालों से इसमें हज़ारों हज़ार गाँठें लगी पड़ी थीं—और वह सब खुलकर गिर पड़ा ? आख़िर यह हुआ कैसे ?

कालापान बीवी : हवा का एक ज़ोरदार झोंका आया...और...

दहलानी : अरे, तुम क्या कह रही हो। ताशदेश के सारे बंधन हवा के एक झोंके में उड़ गये ? हमारे पवनदेव के सिर पर इतना बड़ा कलंक क्यों मढ़ रही हो ? क्या तुमने इसे कोई ऐरा-ग़ैरा देश समझ लिया है कि हवा के हल्के-से झोंके से पेड़ के सूखे पत्ते की तरह उड़ जाए।

कालापान : अपनी ही आँखों से देख लो ना दीदी कि हमारे पवनदेव ने चारों ओर कैसी उथल-पुथल-सी मचा दी है।

दहलानी : देखो, छोटे मुँह से बड़ी बात नहीं सुहाती। हमारे सनातन पवन देव, जिनके बारे में पोथियों में यह लिखा पड़ा है कि उनका एक पुत्र है महावीर, जो बड़ी लम्बी-लम्बी छलाँगे मारा करते हैं।

लगता है उनका ही जादू तुम लोगों के सिर पर चढ़कर बोल रहा है।

एक्का रानी : तुम केवल हम सब पर ही दोष क्यों डाल रही हो ? लगता है, अभी भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। उन्होंने हमारे ताश देश के ऊपर से एक लम्बी छलाँग भरी है और ताशिनी के कलेजों में आग लगाकर घूमते फिर रहे हैं।

कालापान बीवी : सागर पार के मनुष्य तभी ऐसा कहते हैं...शायद वही उनके पुरखे हैं...।

दहलानी : क्यों नहीं ! वे सब उछल-कूद-फलांग वंश की संतान हैं।

एक्का रानी : अच्छा, सच बताना दीदी, क्या अन्दर-ही-अन्दर तुम्हारा भी मन चंचल नहीं हो उठा है ! बताओ न...तुम चुप क्यों हो !

दहलानी : किसी से बताओगी तो नहीं।

एक्का रानी : तुम्हारी क़सम, किसी से नहीं बताऊँगी।

दहलानी : मैंने कल रात आख़िरी पहर में एक सपना देखा...कि मैं अचानक मानवी हो उठी हूँ...और एकदम उन्हीं की तरह घूम-फिर रही हूँ। जब नींद टूटी तो मैं शरम से पानी-पानी हो गयी थी। लेकिन...

एक्का रानी : लेकिन...क्या...?

दहलानी : जाने भी दो वे बातें।

कालापान बीवी : मैं कुछ समझी नहीं। दिन भर क़ैद में छटपटा रहा पंछी सपने में मुक्त उड़ान भरने लगा।

दहलानी : चुप भी कर। कहीं नहला पण्डित ने सुन लिया तो सपने देखने पर प्रायश्चित्त करने का विधान ठोक देगा—क्योंकि यहाँ यह सब पाप है। लेकिन सच, सपने में कैसा उत्साह बना रहता है ?

एक्का रानी : अब जो भी कहो सखी, सागर पार के झोंके ने ताश देश को जैसे झिंझोड़कर रख दिया है। जैसे वह सब कुछ उड़ाये लिए जा रहा है। सारा-का-सारा हाथों से छूटता जा रहा है...

दहलानी : जो भी हो। यहाँ भी थोड़ा-बहुत उड़ चला है और बस थोड़ा-सा ही उड़ना बाक़ी रह गया है। आँचल भले ही हट गया है लेकिन पाँव के पायल तो सीधे नहीं कर पाए।



एक्का रानी : तुम ठीक कहती हो। मन अभी भी कभी समुद्र के इस पार और कभी उस पार पेंगें मार रहा है। अब देखो ना, इस चिड़िया रानी को इन्सान बनने का कैसा शौक़ चर्राया है। इसीलिए उसने इन्सानों जैसा मुखौटा लगा लिया है। बना तो वह भी ताश महल के कारख़ाने में ही है लेकिन देखने में कैसा अजीब-सा लगता है। है न...

दहलानी : हम सब-के-सब एक दूसरे को कैसे दीख रहे हैं—कुछ समझ में ही नहीं आता। मैंने पेड़ की ओट से सुना, वह सौदागर का बेटा कह रहा था कि अरे ये लोग तो इन्सानों जैसा रूप धारण कर रहे हैं।

एक्का रानी : हाय...रे ! और क्या कहा राजपुत्र ने।

दहलानी : वह तो नाराज़ हो गये और कहने लगे ठीक ही तो है। इस नयी सज-धज में उनकी रुचि का पता चल रहा है। उन्होंने कहा, यह सब देखकर उनकी हँसी मत उड़ाओ। अगर हँसना ही चाहते हो तो उन लोगों के पास जाओ जो ताश का रूप धर कर इन्सानों के बीच घूमते-फिरते हैं।

कालापान : अच्छा, क्या ऐसा भी होता है ? इन्सान होकर भी ताश की नक़ल ! वह कैसे !

दहलानी : राजपुत्र बता रहे थे वे रंग वाली तीली से अपने होंठ रँगते हैं। काली कूची से भौंहें बनाते हैं और ना जाने क्या-क्या करते हैं—ठीक हम जैसे रंगारंग ताशों की तरह। और सबसे मज़ेदार बात यह है कि वे अपने पाँव के तलवों में खुर जैसे चमड़े डालते हैं।

एक्का रानी : क्यों !

दहलानी : इसी से उनकी पदोन्नति होती है। इससे उनके पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ते। यह सब कुछ ताशों वाला ही रंग-ढंग है—रंगना-पोतना, सजना-सँवरना। है कि...

कालापान बीवी : नहीं ? मैं समझ गयी, यह सब तो उस पवनदेव का ही हर कहीं उथल-पुथल मचा देने वाला खेल है। जहाँ ताशवंशी अपनी सारी-पहचान गँवाकर इन्सान बनना चाहते हैं वहाँ इन्सान रंग पोत कर

ताश जैसे बना जाना चाहते हैं। सखी, तभी तो मैंने यह तय कर लिया है कि मैं राजपुत्र से इन्सान बनने का मंतर लूँगी।

एक्का रानी : मैं भी।

दहलानी : इच्छा तो मेरी भी हो रही है। लेकिन पता नहीं, मुझे डर क्यों लग रहा है ! मैंने सुना है कि इन्सानों को बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं जबकि ताशों के साथ ऐसा कुछ भी नहीं है।

कालापान बीवी : सखी, तू दुख की बात कर रही है। दुख ने तो अभी से ही सीने के अन्दर अपना नृत्य शुरू कर दिया है।

एक्का रानी : लेकिन मैं इस दुख का नशा हरगिज़ छोड़ना नहीं चाहती। लेकिन मैं यह नहीं समझ पाती कि रह-रहकर आँखों मेरी आँखें क्यों भर आती हैं !

गीत

क्यों ये नयन आँसू से भर-भर जाँय
क्यों मेरा मन अनमना हो जाय ?
क्यों सहसा कौन-सी बात याद आ जाये
उमगे मन में, फिर भी याद ना आये
जैसे किसी की बात मेरा जी दुखा जाये
मानो कोई लौट गया अनादर से
बींधे उसकी उपेक्षा प्राणों को मेरे
क्यों सहसा कौन-सी बात जी में आये
उमगे मन में मेरे, फिर भी याद न आये।

कालापान बीवी : चलो, भाग चलो यहाँ से, सम्पादक आ रहा है। उसके अख़बार में अगर यह सब छप जाय तो कहीं मुँह नहीं दिखा पाऊँगी।

दहलानी : अरे सबके-सब झुण्डों में बँधकर आ रहे हैं। इस बूढ़े नीम के पेड़ तले आज सभा बैठेगी। अब अपने को रोक पाना संभव नहीं।

(प्रस्थान)

(राजा साहब और दरबारियों का प्रवेश)

राजा : यह जगह कुछ अजीब-सी लग रही है। और यह किसकी खुशबू है ?

पंजा : कदम्ब की।

राजा : कदम्ब ! बड़ा ही अजीब-सा नाम है। और यह कौन-सा पंछी बोल रहा है।

पंजा : मैंने सुना है इसे घुग्घु...।

राजा : घुग्घु...भाई हम ताशों की भाषा में इसे अच्छा-सा नाम दे दो ! बोलो—विनति। वैसे आज तो कोई काम करना ही मुश्किल हो गया है। आज तो जैसे आकाश बातें कर रहा है और हवा गुनगुना रही है। मैंने बड़ी कोशिशों के बाद मन को शान्त कर रखा है। रानी बीवी को तो घर में रख पाना तक मुश्किल हो गया है। वह ऐसे नाच रही है जैसे उसके सिर पर भूत सवार हो। दरबारियो, आज मैं आप लोगों को ठीक से पहचान नहीं पा रहा हूँ। आज तो दरबार में कोई रौनक ही नहीं है। सभी गँवारों जैसे मुँह बाये खड़े हैं।

सभी (एक साथ) : आप एकदम सही फ़रमा रहे हैं। हमारा वह सारा साज-सिंगार बिखर गया है। अपने आप उतर गया और वे सब रास्तों पर इधर-उधर पड़े हैं।

राजा : सम्पादक, ऐसा लगता है तुम भी अपनी सारी गरिमा और गम्भीरता कहीं गवाँ बैठे हो।

गुलाम : मैं तो सुबह से ही बगीचे में बैठा-बैठा उन भगोड़ों के नाम इकट्ठे कर रहा था—जो इस हवा के शिकार हैं। सम्पादकीय स्तंभ पर नज़र पड़ी तो पता चला लेखनी में-से छंद प्रवाहित हो रहा है। मैंने सुना है, आजकल के डाक्टर इस तरह की महामारी को 'इनफ़्लुएंजा' कहते हैं।

राजा : कोई नमूना तो पेश करो, मैं भी तो देखूँ।

गुलाम : हाँ, देखिये यह रहा—

गीत

जिस देश की हवा नहीं मानती
व्यर्थ की जकड़बन्दी
उस देश में है दहला तत्त्वनिधि,
कैसे बचाओगे कुदृष्टि
वहाँ तय है अनावृष्टि।

राजा : बस...बस, बहुत हुआ। इसे चौथी कक्षा के पाठ्यक्रम में रखवा देना। इसे सारे ताशवंशी शिशु कंठस्थ कर लेंगे।

छक्का : राजा साहब, वैसे हम सब आपकी चौथी कक्षा के विद्यार्थी तो नहीं। लेनिक आज अचानक ऐसा लग रहा है कि हम वयस्क हो गये हैं। अब उन छन्दों में हमारा जी नहीं रमता।

पंजा : अरे ओ परदेसी, समुद्र पार का कोई छन्द हमें सुना सकते हो !

राजपुत्र : क्यों नहीं, लो सुनो—

गीत

गगन-गगन में हाँक पड़ी
विद्युत् वाणी वज्रवाहिनी बैशाखी
छन्द जाग उठे स्पर्धा के
वनस्पति शाखा में
शून्य के मद में उड़ चले पंछी
अनचीन्हे पथ के छन्द उड़े
तेज़ गति भर पंखों में।
अन्तर तल में, मंथन करे छन्द में
श्वेत श्याम द्वन्द्व में,
कभी शुभ में, कभी अशुभ में
कभी सरल में, कभी ऋजु में,
कभी होमाग्नि तरंग में
मुक्ति के रण में, योद्धाओं के भ्रूभंग में
रुद्ररथ के पहिये पर,
छन्द बढ़ चला प्रलय के पथ पर।

राजा : तुम लोग कुछ समझ पाए ?

ताश दल : (एक साथ) कुछ भी नहीं।

राजा : तो फिर।

ताश दल : (एक साथ) हमारा मन अवश्य झूम उठा है।

राजा : यह तो कोई अच्छी बात नहीं। तुम सबने सनातन शास्त्र की बात तो सुनी है न...

''सचमुच शान्त वही जन
जम भी जिसको ठेल-ठेल कर
हिला-डुला और परे फेंक कर, बोल पड़े—
'इसका कोई नहीं प्रयोजन।'

राजा : सुनो परदेसी !

राजपुत्र : आदेश कीजिए।

राजा : तुम दोनों, जो इस ताशद्वीप में चारों ओर बेचैनी से घूम रहे हो, यहाँ के जल में तैर रहे हो, पर्वत-शिखरों पर चढ़ सैर कर रहे हो और हाथ में कुल्हाड़ी थामे जंगल साफ़ करके रास्ता बना रहे हो, आख़िर यह सब क्यों ?

राजपुत्र : राजा साहब, आप लोग जो केवल उठते-बैठते रहते हैं, करवटें बदलते रहते हैं, अंगड़ाइयाँ और जम्हाइयाँ भरते रहते हैं और ज़मीन पर लोटते-फिरते हैं—आख़िर क्यों !

राजा : यही हमारा नियम है।

राजपुत्र : और यही हमारी इच्छा है।

राजा : इच्छा ! सत्यानाश। इस ताश के देश में इच्छा ! अरे मित्र, तुम सब यह क्या बक रहे हो ?

छक्का-पंजा : (एक साथ) हम तो उससे इच्छा मंत्र ले भी चुके।

राजा : कौन-सा मंत्र।

छक्का-पंजा : ***गीत***

इच्छा इच्छा...
वही तो जोड़े
वही तो जोड़े
वही तो देता-लेता
वही तो चोट करे तालों पर
वही तो बंधन तोड़ के भागे
फिर बँधने को वापस आये अपने घर

राजा : जाओ, जाओ। चले जाओ, यहाँ से, अभी तुरंत। लालपान देवी, क्या तुमने सुना नहीं ! चिड़ियारानी, तुम देख रही हो न इसकी तरफ़। आख़िर ऐसा अचानक क्या हो गया !

लालपान बीवी : इच्छा...और क्या ?

सारे ताश : (एक साथ) इच्छा !

राजा : बात क्या है लालपान बीवी। तुम इतनी जल्दी क्यों चल पड़ीं ?

रानी : अब और बैठा नहीं जाता।

राजा : मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारा मन भी विचलित हो उठा है।

रानी : हाँ महाराज, यह सच है।

राजा : तुम जानती हो कि ताश देश का सबसे बड़ा अपराध है चंचल होना।

रानी : मालूम है। और यह भी जानती हूँ कि यह अपराध ही उपभोग की सबसे बड़ी वस्तु हैं।

राजा : अपराध की वस्तु को तुम उपभोग की वस्तु बता रही हो। तुम ताश देश की भाषा तक भूल गयी !

रानी : हमारे इस ताश देश की भाषा में ज़ंजीरों और बेड़ियों को अलंकार कहते हैं। लेकिन अब इस भाषा को भूल जाने का वक़्त आ गया है।

ईंट साहब : हाँ बीवी रानी ! इनकी भाषा में जेलख़ाने को स्वर्ग कहा जाता है।

राजा : ख़ामोश !

लालपान : ये किसी भी बुझौवल को शास्त्र कहते हैं।

राजा : ख़ामोश।

लालपान बीवी : गूँगे को साधू कहते हैं।

राजा : ख़ामोश !

लालपान बीवी : और मूर्ख को पंडित।

राजा : ख़ामोश !

पंजा : ये मुर्दे को ज़िन्दा कहते हैं।

राजा : चुप रहो।

रानी : और ये स्वर्ग को अपराध कहते हैं। तुम लोग ऊँचे स्वर में बोलो, 'जय इच्छा की जय।'

सभी : जय, इच्छा की जय !

राजा : रानी बीवी, मैं तुम्हें बनवास की सज़ा सुनाता हैं।

रानी : चलो, मेरे प्राण तो बचे।



राजा : हाँ निर्वासन ! (रुककर) अरे तुम तो चल पड़ी ! कहाँ जा रही हो ?

रानी : निर्वासन को।

राजा : और मुझे अकेला छोड़ जाओगी तुम !

रानी : तुम्हें भला क्यों छोड़ जाऊँगी ?

राजा : तो फिर।

रानी : तुम्हें भी साथ लेकर जाऊँगी।

राजा : कहाँ !

रानी : निर्वासन को।

राजा : और ये लोग ! हमारी यह प्रजा !

सभी : हम सभी निर्वासन को जायेंगे।

राजा : दहला पंडित ! तुम क्या सोच रहे हो ?

दहला : वही निर्वासन !

राजा : और तुम्हारे सारे पोथी-पत्तर ?

दहला : उन्हें पानी में बहा दूँगा।

राजा : और वे नियंत्रकमूलक क़ानून !

दहला : अब वे सब नहीं चलेंगे।

सभी : नहीं, चलेंगे, नहीं चलेंगे।

रानी : और वे दोनों इन्सान कहाँ गये ?

राजपुत्र : हम दोनों यहाँ हैं महाराज !

रानी : क्या हम भी इन्सान बन पायेंगे ?

राजपुत्र : ज़रूर। क्यों नहीं ?

राजा : अच्छा परदेसी। क्या मैं भी इन्सान बन पाऊँगा ?

राजपुत्र : शक तो होता है लेकिन रानी जो तुम्हारे साथ है। जय रानी माँ की जय।

सभी : गीत गाते हैं–

गीत

बंधन, तोड़ो बंधन, तोड़ो बंधन तोड़ो बंधन
तोड़ो...बंधन।
बन्दी प्राण मन

निर्बन्ध होने दो।
सूखे नद में जागे
जीवन ज्वार की उद्दाम लीला
मुक्ति का गाओ जयगान।
जीर्ण पुरातन बह जाए सब
हमने सुना है अब
भय नहीं, नहीं भय, नहीं भय
किसी नूतन की पुकार !
भय नहीं अनजाने का
रुद्ध कपाट को तोड़ो
तेज़ गति से दौड़ो।



आवरण : चैताली चटर्जी

ISBN 81-260-0317-0

मूल्य : पचास रुपये